International Journal for Research Trends in Social Science & Humanities
Volume 4, Issue 2
Mar-Apr 2026, PP 1-9

साहित्य, भाषा और साहित्यिक आलोचना (शास्त्रीय, आधुनिक और समकालीन)

डॉ. राजेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
एम.जी.एम.पी.जी. कॉलेज, सम्भल (उ.प्र.)
गुरु जंभेश्वर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद (उ.प्र.) से संबद्ध

ई-मेल: **rrhpatel.**77**bsl@gmail.com**
ORCID ID: 0009-0004-8138-9026

शोध सार

साहित्य मानव समाज का दर्पण है। साहित्य और भाषा का संबंध अत्यंत घनिष्ठ एवं अविच्छेद्य है। जहाँ भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है, वहीं साहित्य उस अभिव्यक्ति का कलात्मक तथा सुव्यवस्थित रूप प्रस्तुत करता है। भाषा विचारों को व्यक्त करती है, जबकि साहित्य संस्कृति, भावनाओं और अनुभवों को जीवंत रूप में अभिव्यक्त करता है। साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है और आलोचना उस अभिव्यक्ति का विश्लेषण, व्याख्या तथा मूल्यांकन कर उसकी गुणवत्ता का परीक्षण करती है। हिंदी साहित्य भारतीय उपमहाद्वीप की समृद्ध एवं बहुआयामी साहित्यिक परंपराओं में से एक है, जो सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा दार्शनिक परिवर्तनों का सशक्त प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत शोध-पत्र हिंदी साहित्य के ऐतिहासिक विकास, भाषिक संरचना तथा प्रमुख आलोचनात्मक प्रवृत्तियों का विश्लेषण करता है। इसमें आदिकाल, मध्यकाल (भक्तिकाल एवं रीतिकाल) से लेकर आधुनिक और उत्तर-आधुनिक साहित्यिक धाराओं तक का समग्र अध्ययन किया गया है। हिंदी भाषा के मानकीकरण, उन्नीसवीं शताब्दी में मुद्रण परंपरा के विकास, राष्ट्रवाद तथा शैक्षिक संस्थाओं की भूमिका को आधुनिक साहित्यिक चेतना के निर्माण में महत्वपूर्ण माना गया है। शोध में भक्तिकाल के कवि कबीर और तुलसीदास की भक्तिपरक काव्यधारा, रीतिकाल की अलंकारिक एवं श्रृंगारप्रधान प्रवृत्तियाँ, भारतेंदु युग में आधुनिक गद्य का विकास, छायावाद की भावुक एवं प्रतीकात्मक काव्यधारा तथा प्रगतिवाद की यथार्थवादी चेतना का विश्लेषण किया गया है। स्वतंत्रता-उत्तर काल में नई कहानी और नई कविता आंदोलनों के माध्यम से उभरी अस्तित्ववादी संवेदना, मनोवैज्ञानिक जटिलता तथा सामाजिक आलोचना को भी विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। साथ ही हिंदी साहित्यालोचना की प्रमुख धाराओं–रस, ध्वनि एवं अलंकार सिद्धांत जैसी पारंपरिक काव्यशास्त्रीय मान्यताओं से लेकर मार्क्सवादी, स्त्रीवादी, दलित तथा उत्तर-औपनिवेशिक दृष्टिकोणों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह शोध-पत्र इस तथ्य पर बल देता है कि हिंदी साहित्यिक आलोचना ने भारतीय परंपरा और पाश्चात्य सिद्धांतों के मध्य संवाद स्थापित करते हुए एक समन्वित आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य विकसित किया है।

1. भाषा और साहित्य का संबंध

यह अध्ययन हिंदी साहित्य को एक सांस्कृतिक अभिलेख तथा वैचारिक विमर्श के सजीव मंच के रूप में स्थापित करता है, जो समकालीन भारतीय समाज में पहचान, प्रतिरोध और स्मृति से जुड़े प्रश्नों को अभिव्यक्त करने में निरंतर प्रासंगिक बना हुआ है। भाषा विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। भाषा को श्रव्य (मौखिक) रूप में व्यक्त करने के लिए ध्वनि तथा लिखित रूप में अभिव्यक्ति के लिए लिपि का उपयोग किया जाता है। भाषा केवल संप्रेषण का साधन ही नहीं, बल्कि हमारी अस्मिता, संस्कृति, कला, विकास तथा सामाजिक निर्माण की पहचान का आधार भी है। भाषा के बिना मनुष्य और समाज दोनों अधूरे हैं।
भाषा के संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है–
"**अक्सर हम जिसे भाषा कहते हैं, वह बोलियों का एक समुदाय होता है।**"[1]

भाषा और साहित्य का संबंध अन्योन्याश्रित है। भाषा के अभाव में साहित्य का अस्तित्व संभव नहीं है। भाषा और साहित्य के पारस्परिक संबंध को समझने के लिए दोनों की परिभाषा एवं स्वरूप पर विचार करना आवश्यक है। साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है। किसी देश में बोली जाने वाली भाषा के माध्यम से उस समाज की रीति-रिवाज, जीवन-शैली, परंपराएँ तथा सांस्कृतिक संरचना का ज्ञान साहित्य से ही प्राप्त होता है।
भाषा की संरचना को स्पष्ट करते हुए कहा गया है–
"**भाषा वाक्यों से बनती है, वाक्य शब्दों से और शब्द मूल ध्वनियों से निर्मित होते हैं। इस प्रकार वाक्य, शब्द और मूल ध्वनियाँ ही भाषा के अंग हैं तथा व्याकरण में इन्हीं तत्वों का अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है।**"[2]
भाषा-वैज्ञानिक हमें शब्द प्रदान करते हैं, किंतु साहित्यकार उन्हीं शब्दों का चयन करके सृजनात्मक कृति को जन्म देते हैं। भाषा-वैज्ञानिक वाक्य संरचना का ज्ञान देते हैं, जबकि साहित्यकार अर्थ की संवेदना को सुरक्षित रखते हुए भाषा में सौंदर्य एवं लालित्य का संचार करते हैं। वैज्ञानिक लेखन में भाषा अनुशासन प्रमुख होता है, जबकि साहित्यकार शब्दों के रचनात्मक प्रयोग से पाठक के मनोभावों को स्पर्श करते हैं।सामान्यतः भाषा का प्रयोग व्यापक भू-भाग में होता है, जबकि उपभाषा सीमित क्षेत्र में प्रचलित रहती है। उपभाषाओं के अंतर्गत ही विभिन्न बोलियाँ सम्मिलित होती हैं। साहित्य के क्षेत्र में भाषा का प्रयोग होता है, जबकि बोलियों का प्रयोग प्रायः दैनिक संवाद और लोकजीवन में अधिक दिखाई देता है।

भारत एक बहुभाषी देश है। इस संदर्भ में कहा गया है–
"भाषाओं की पारस्परिक बोधगम्यता इस तथ्य का प्रमाण है कि विभिन्न भाषाएँ एक-दूसरे के अत्यंत निकट हैं अथवा उन पर परस्पर प्रभाव इतना गहरा है कि उनके बीच विभाजन रेखा खींचना प्रायः कठिन हो जाता है। भारतीय संदर्भ में भाषाओं की विविधता के मूल में एकता के तत्व विद्यमान हैं।"[3]
इस प्रकार भाषा और साहित्य का संबंध केवल अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सांस्कृतिक निरंतरता, सामाजिक संवाद तथा मानवीय चेतना के विकास का आधार भी है।

2. भाषा के रूप एवं साहित्य का स्वरूप

International Journal for Research Trends in Social Science & Humanities
Volume 4, Issue 2
Mar-Apr 2026, PP 1-9

भाषा के दो रूप माने जाते हैं– मौखिक (कथित) और लिखित। देश तथा काल के अनुसार भाषा अनेक रूपों में विभाजित होती रही है। यही कारण है कि विश्व में विविध भाषाएँ प्रचलित हैं।
इस संदर्भ में कहा गया है–
"भाषा जब व्यापक शक्ति ग्रहण कर लेती है, तब आगे चलकर राजनीतिक एवं सामाजिक शक्ति के आधार पर राजभाषा अथवा राष्ट्रभाषा का स्थान प्राप्त करती है। ऐसी भाषा सभी सीमाओं को लांघकर व्यापक क्षेत्र में विचार-विनिमय का माध्यम बनती है तथा पूरे राष्ट्र की भावनात्मक एकता को सुदृढ़ करने में सहायक होती है।"[4]

ज्ञानराशि के संचित कोश को ही साहित्य कहा जाता है। साहित्य के माध्यम से किसी राष्ट्र का इतिहास, गौरव, संस्कृति और सभ्यता का परिचय प्राप्त होता है। साथ ही वहाँ के पूर्वजों के विचार, अनुसंधान, प्राचीन रीति-रिवाज, जीवन-पद्धति तथा परंपराओं की जानकारी भी साहित्य द्वारा ही संभव होती है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में–
"शताब्दियों के दीर्घ अनुभव से यह ज्ञात होता है कि किसी समाज की वेशभूषा, रहन-सहन, सामाजिक तथा धार्मिक विचारों की जानकारी साहित्य के अध्ययन से प्राप्त हो जाती है। श्रेष्ठ रचना का निर्माण ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि संपूर्ण समाज को इस प्रकार जागरूक बनाना आवश्यक है कि वह उस श्रेष्ठ कृति को अपने जीवन में आत्मसात कर सके।"[5]

साहित्य की परिभाषा करते हुए कहा गया है–
'हितेन सहितम्', अर्थात् जो लोकहित का साधन करे वही साहित्य है। साहित्य उस रचना को कहा जाता है जो लोकमंगल की भावना को अभिव्यक्त करे।

मुंशी प्रेमचंद के अनुसार– **"साहित्य जीवन की आलोचना है।"**
इस सूक्ति से स्पष्ट होता है कि साहित्य का जीवन से अत्यंत घनिष्ठ संबंध है। भारतीय चिंतक एवं कवि साहित्य के उपयोगितावादी दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। कविवर मैथिलीशरण गुप्त के अनुसार–

"मानते हैं, जो कला को बस कला के अर्थ ही,
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।"[6]

अर्थात् कला केवल कला के लिए नहीं होती, बल्कि उसका उद्देश्य व्यापक मानवीय और सामाजिक कल्याण से जुड़ा होता है। कला केवल सौन्दर्य का विधान नहीं करती, बल्कि *सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्* से युक्त जीवन-मूल्यों की स्थापना करती है। साहित्य हमारी प्रेरणा है तथा संस्कृति हमारी पहचान। साहित्य व्यक्ति का संस्कार करता है, उसके भीतर निहित सद्गुणों को जागृत करता है और पाशविक प्रवृत्तियों का शमन करता है।

गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार कविता लोकमंगल का विधान करती है तथा गंगा के समान सबका कल्याण करने वाली होती है–

***"कीरति भनिति भल सोई,
सुरसरि सम सब कह हित होई।"[7]***

भाषा और साहित्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भाषा है तो साहित्य है और जब साहित्य विकसित होता है तब भाषा स्वतः ही परिष्कृत एवं समृद्ध होती जाती है। वर्तमान समय में हिंदी भाषा विश्व स्तर पर अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित कर चुकी है।

किसी भी समाज की वास्तविक पहचान उसके साहित्य से होती है। साहित्य ही समाज का प्रेरक, नियामक तथा दिशा-निर्देशक होता है। दूसरी ओर समाज की मानसिक प्रवृत्तियों के अनुरूप ही साहित्य का निर्माण भी होता है।

एक साहित्यकार के शब्दों में–

"मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाङ्मय मनुष्य को दुर्गति और पराधीनता से न बचा सके, जो उसकी आत्मा को तेजोमय न बना सके, जो उसके हृदय को संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहना मेरे लिए कठिन है।"[8]

भारत की राजभाषा हिंदी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। हिंदी के अतिरिक्त संस्कृत, भोजपुरी, मराठी, कोंकणी, मैथिली, गढ़वाली तथा नेपाली आदि भाषाएँ भी देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं। भारत की प्रादेशिक भाषाओं के लिए एक समान लिपि के रूप में देवनागरी की कल्पना सर्वप्रथम महर्षि दयानंद सरस्वती के चिंतन में उभरी। आर्य समाज ने हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार द्वारा महत्वपूर्ण राष्ट्रीय सेवा का कार्य किया। इसी क्रम में–

"आर्य समाज ने राष्ट्रभाषा को समृद्ध करने वाले अनेक विद्वान, लेखक, साहित्यकार, कवि, आलोचक तथा पत्रकार प्रदान किए।"[9]

हिंदी भाषा देवभाषा संस्कृत की उत्तराधिकारी मानी जाती है। हिंदी ने विभिन्न भाषाओं के शब्दों को आत्मसात करते हुए स्वयं को समृद्ध बनाया है। सरलता और सहजता के कारण हिंदी जनसामान्य के मन को प्रभावित करती है। हिंदी हमारे देश की कला और संस्कृति की संवाहक तथा प्रचारक भाषा है।

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता विविधता में एकता है। भाषा और संस्कृति का संबंध अत्यंत घनिष्ठ है। भाषा के बिना संस्कृति अधूरी है और संस्कृति के बिना भाषा शून्यता को प्राप्त हो जाती है। भारतीय साहित्य उत्तर से दक्षिण तक सांस्कृतिक एकता का संदेश देता है, जिसमें रामायण, महाभारत, पुराण, भागवत, बौद्ध, जैन तथा अन्य धार्मिक परंपराओं का विशाल साहित्य समाहित है। दूरदर्शन से प्रसारित रामायण और महाभारत ने भी इस सांस्कृतिक एकता को प्रमाणित किया है। उत्तराधिकार में प्राप्त सांस्कृतिक मान्यताएँ राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य करती हैं।

3. साहित्यालोचना: स्वरूप एवं महत्व

साहित्यालोचना, आलोचना का एक विशिष्ट प्रकार है। साहित्यिक आलोचना वह प्रक्रिया है जिसमें किसी साहित्यिक कृति का गहन अध्ययन, विश्लेषण, मूल्यांकन तथा व्याख्या की जाती है। साहित्यिक आलोचना साहित्य को समृद्ध एवं परिष्कृत बनाती है।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के शब्दों में–

"साहित्य में मनुष्य का केवल जीवन ही नहीं, बल्कि जीवन की वे कामनाएँ भी निहित रहती हैं जो अनंत जीवन में भी पूर्ण नहीं हो सकतीं।" [10]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मानव जीवन के साथ गहरे रूप से जुड़ाव के कारण साहित्य और आलोचना के बीच अटूट संबंध विद्यमान है। पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों की मान्यताएँ भी इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करती हैं।

हेगेल के मतानुसार–

"मानव के जन्मजात सौन्दर्य-बोध तथा उसकी आत्म-अभिव्यक्ति और अनुकरण प्रवृत्ति को साहित्य की मूल प्रेरणा माना जा सकता है।" [11]

भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं है, बल्कि हमारी अस्मिता, संस्कृति, कला, विकास तथा सामाजिक निर्माण की पहचान का भी आधार है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है–

"रागों और मनोवेगों का परिष्कार करते हुए उनका सृष्टि के साथ उचित सामंजस्य स्थापित करना, जिससे मनुष्य के जीवन में नवीन चेतना का संचार हो।" [12]

भाषा विचारों को अभिव्यक्त करती है, जबकि साहित्य संस्कृति, भावनाओं और अनुभवों को सजीव रूप प्रदान करता है। साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है और आलोचना उस अभिव्यक्ति का विश्लेषण, व्याख्या तथा मूल्यांकन कर उसकी गुणवत्ता का परीक्षण करती है।
डॉ. गुलाबराय के मतानुसार–

"साहित्य जीवन का ही उत्कृष्ट रूप है; वह जीवन-सागर से उठी हुई उच्चतम तरंग है। मानव जाति के भावों, विचारों और संकल्पों की आत्मकथा साहित्य के रूप में अभिव्यक्त होती है।" [13]

अतः साहित्य जहाँ जीवन की अभिव्यक्ति है, वहीं आलोचना उस अभिव्यक्ति की सार्थकता, गुणवत्ता और प्रभाव का परीक्षण करती है। प्रस्तुत शोध-पत्र में हिंदी साहित्य के ऐतिहासिक विकास, भाषिक संरचना तथा प्रमुख आलोचनात्मक प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है। इसमें आदिकाल, मध्यकाल (भक्तिकाल एवं रीतिकाल) से लेकर आधुनिक एवं उत्तर-आधुनिक प्रवृत्तियों तक की साहित्यिक धाराओं का समग्र अध्ययन किया गया है।

4. हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ एवं साहित्यालोचना का विकास

प्रस्तुत शोध-पत्र में भक्तिकाल के कवियों कबीर तथा तुलसीदास की भक्तिपरक काव्यधारा, रीतिकाल की अलंकारिक एवं श्रृंगारप्रधान प्रवृत्तियाँ, भारतेंदु युग में आधुनिक गद्य के विकास, छायावाद की भावुक एवं प्रतीकात्मक काव्यधारा तथा प्रगतिवाद की यथार्थवादी चेतना का विश्लेषण किया गया है।

स्वतंत्रता-उत्तर काल में नई कहानी तथा नई कविता आंदोलनों के माध्यम से विकसित अस्तित्ववादी संवेदना, मनोवैज्ञानिक जटिलता तथा सामाजिक आलोचना को भी विशेष रूप से रेखांकित किया गया है।

इसके साथ ही हिंदी साहित्यालोचना की प्रमुख धाराओं–रस, ध्वनि एवं अलंकार सिद्धांत जैसी पारंपरिक काव्यशास्त्रीय मान्यताओं से लेकर मार्क्सवादी, स्त्रीवादी, दलित तथा उत्तर-औपनिवेशिक दृष्टिकोणों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह शोध-पत्र इस तथ्य पर बल देता है कि हिंदी साहित्यिक आलोचना ने भारतीय परंपरा और पाश्चात्य सिद्धांतों के मध्य संवाद स्थापित करते हुए एक समन्वित आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य का विकास किया है।

साहित्य विषय, रूप और शिल्प की दृष्टि से विविध अन्वेषणों एवं प्रयोगों से समृद्ध रहा है। गद्य और पद्य दोनों ही रूपों में साहित्य नवीन संवेदनाओं से परिपूर्ण दिखाई देता है। काव्य-शिल्प की दृष्टि से आधुनिक युग को एक क्रांतिकारी युग कहा जा सकता है। वास्तव में सौंदर्य-चेतना प्राचीन काल से ही विकसित होती रही है, किंतु आधुनिक युग में वैश्विक स्तर पर घटित परिवर्तनों की स्पष्ट छाप साहित्य पर परिलक्षित होती है।

ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धियों तथा प्रभावशाली सामाजिक-राजनीतिक घटनाओं ने रचनाकार को अभिव्यक्ति के नए और जटिल आयाम प्रदान किए। नई सौंदर्याभिरुचि के कारण रचनाकार की भाव-संरचना भी जटिल होती गई, जिसके परिणामस्वरूप कहीं-कहीं नकारात्मक स्वर भी उभर कर सामने आए। साहित्यालोचक के सामने जो मूल समस्या उपस्थित हुई, वह थी– संप्रेषणीयता। इसी समस्या के समाधान की खोज में प्रयोगवाद तथा नई कविता जैसी साहित्यिक प्रवृत्तियों का विकास हुआ, जिसे कला-मूल्यों की पुनर्स्थापना की प्रक्रिया भी कहा जा सकता है।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार 'शिल्प' शब्द का साहित्य-समालोचना में व्यापक प्रयोग तब से आरंभ हुआ, जब ललित कलाओं के अंतर्संबंध तथा पारस्परिक प्रभावों पर सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक स्तर पर गंभीर चर्चा प्रारंभ हुई। काव्य-शिल्प के आंतरिक स्वरूप में शब्द-योजना, भाषा, छंद, तुक, उपमान, बिंब, प्रतीक आदि तत्वों के साथ छोटी कविता, लंबी कविता, काव्य-नाटक तथा नवगीत जैसी विधाओं को सम्मिलित करते हुए इस क्षेत्र को अत्यंत विस्तृत रूप प्रदान किया गया।

तार सप्तक के कवियों ने काव्य-शिल्प को व्यापक आयाम देने का प्रयास किया। इस संदर्भ में गिरिजा कुमार माथुर लिखते हैं–

"नए विषयों के साथ-साथ उपमान, प्रतीक, चित्र, रंग, छंद, लय, अंतःसंगीत, भाषा और शब्द-योजना के नवीन प्रयोगों ने रूप-विधान की दिशा में व्यापक क्रांति उत्पन्न कर दी।"

नए कवियों ने शिल्प के प्रमुख तत्वों में भाषा और छंद को विशेष महत्व दिया। इसका एक प्रमुख कारण यह भी रहा कि पाश्चात्य साहित्य में भी भाषा–तत्व को सर्वोपरि माना गया। यह सत्य है कि काव्य में सर्वप्रथम भाषा और शब्द का ही स्थान होता है तथा शब्द की अर्थवत्ता की सशक्त पकड़ ही रचनाकार की कृति को प्रभावशाली बनाती है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार–

"आलोचना साहित्य का वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत मूल्यांकन है।"

साहित्यिक आलोचना साहित्य का अभिन्न अंग है। यह साहित्य को दिशा, गहराई तथा परिष्कार प्रदान करती है। आलोचना के बिना साहित्य का विकास संभव नहीं है। अतः यह कहा जा सकता है कि साहित्यिक आलोचना साहित्य और समाज दोनों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

वर्तमान समय में साहित्यिक आलोचना का स्वरूप और अधिक व्यापक हो गया है। डिजिटल युग में ब्लॉग, सोशल मीडिया तथा ऑनलाइन मंचों के माध्यम से आलोचना का नया रूप सामने आया है। अब आलोचना केवल विद्वानों तक सीमित नहीं रही, बल्कि सामान्य पाठक भी अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगा है।

हालाँकि इसके साथ आलोचना की गुणवत्ता बनाए रखना एक चुनौती बन गया है। साहित्यिक आलोचना साहित्य की आत्मा के समान है–यह साहित्य को दिशा, गहराई और परिष्कार प्रदान करती है। इसलिए कहा जा सकता है कि साहित्यिक आलोचना न केवल कृतियों का मूल्यांकन करती है, बल्कि साहित्य और समाज दोनों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

सन्दर्भ सूची

1. शर्मा, रामविलास. भाषा और समाज. पृ. सं. 136।
2. सहाय, आचार्य शिवपूजन. व्याकरण दर्पण. पृ. सं. 02।
3. भाटिया, कैलाश चंद्र. हिंदी तथा भारतीय भाषाओं के समान तत्त्व. प्रथम संस्करण, 1995, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, पृ. सं. 39।
4. प्रसाद, वासुदेव नंदन. आधुनिक हिंदी व्याकरण और रचना. 23वाँ संस्करण, 1993, भारतीय भवन, पृ. सं. 03।
5. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद. अशोक के फूल. पृ. सं. 166।
6. गुप्त, मैथिलीशरण. साकेत. प्रथम सर्ग, पृ. सं. 166।
7. तुलसीदास, गोस्वामी. रामचरितमानस. बालकाण्ड, गीता प्रेस, गोरखपुर।
8. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद. अशोक के फूल. पृ. सं. 165।
9. लाल, लक्ष्मी नारायण. हिंदी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन. पी–एच.डी. शोध प्रबंध, लखनऊ विश्वविद्यालय, 1961।
10. वाजपेयी, नंददुलारे. आधुनिक साहित्य. राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–02, संस्करण वर्ष 2003, पृ. सं. 430।
11. गौड़, गणेश दत्त. आधुनिक हिंदी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन. सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, 1965, पृ. सं. 06।

12. नगेन्द्र. विचार और अनुभूति. गौतम बुक डिपो, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1991, पृ. सं. 88।